

आईनों में उनके भूतों जैसे अक्स, जिनके बीच वहाँ मौजूद किसी ने, जो केशव को नहीं जानता था, पड़ोस में बैठे घोष से पूछा कि ये कौन साहब हैं। घोष ने उसे कहा कि वह केशव है, उसके बचपन का दोस्त। उस आदमी ने फिर पूछा कि काम-धन्धा क्या करते हैं, जिस पर घोष ने बताया कि वह नामी प्रॉपर्टी डीलर है, कभी कोई जमीन, मकान, हवेली, खेत, होटल, कोई सिनेमाघर, अस्पताल, कब्रिस्तान, मीनार जितनी ऊँची बिल्डिंग या मीनार, या मकबरा, कुछ भी खरीदना, बेचना हो तो....

(पहल, 1998)

* ————— *

योगेन्द्र आहूजा

कथाकार योगेन्द्र आहूजा का जन्म 11 दिसम्बर 1959 को बदायूँ उत्तर प्रदेश में हुआ। योगेन्द्र ने कम ही कहानियाँ लिखी हैं लेकिन जितनी लिखीं काफी ठोस। अपनी कहानियों में इन्होंने अपने समय के सच को बारीकी से पकड़ा है और उस पर गहराई से विचार किया है। कहानियाँ थोड़ी जटिल हैं लेकिन जटिलता यथार्थ को पकड़ने की कोशिश भी करती हैं। योगेन्द्र ने अपनी कहानियाँ में शिल्प में बहुत कुछ नया दिया और उसे अर्थवान बनाया। अभी तक में मात्र एक कहानी संग्रह 'अंधेरे में हंसी' प्रकाशित है। कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। 'गलत' कहानी के लिए 1999 का कथा पुरस्कार। वर्ष 2003 का 'परिवेश सम्मान'। 'स्त्री विमर्श' कहानी पर वर्ष 2007 का रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार। वर्ष 2008 का विजय वर्मा कथा सम्मान।

सम्पर्क :- 11/63, सैक्टर-3, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. - 9899398693

सिफैलोटस

रघुनन्दन त्रिवेदी

(यह एक विषैला, मांसभक्षी पौधा है जिसमें एक ढक्कन-सा होता है जो वर्षा के पानी को रोकता है ताकि वह पानी उसके विष को हल्का न कर दे)

खाली बरस

मोहल्ले में इतने घर थे कि कुछ न कुछ होता ही रहता था। कभी कहीं ब्याह-सगाई का धूम-धड़ाका तो भी कहीं मौत का मातम। शायद ही कोई बरस था जो घटनाओं के लिहाज से खाली गया हो। और कुछ नहीं तो एक रसोई में जीमनेवाल भाई ही आपस में झगड़कर अलग हो जाते और मोहल्लेवालों को बातचीत के लिए विषय मिल जाता। अकेले दिवाकर के यहाँ मेरे देखते-देखते कितना-कुछ हुआ! दिवाकर के बड़े भैया डॉक्टर बने। उनकी शादी हुई। उन्होंने शंकर नगर में बंगला बनवाया। अपनी माँ और बाबू के साथ दिवाकर वहाँ रहने गया और छह-सात महीने बाद वापस लौट आया।

परन्तु यह कैसा घर था हमारा कि यहाँ कुछ होता ही नहीं था! न शरद भैया का ब्याह, न तनु दी की सगाई और न किसी के जन्म-दिन का कोई उत्सव ही। ये तो खैर बड़ी घटनाएँ थीं मुझे तो कोई छोटी-सी घटना भी याद नहीं जो उन बरसों में हमारे यहाँ हुई हो। रोज एक ही तरीके से जागना, एक ही तरीके से सोना। और जीवन का यह ढर्रा इतना नियमित, इतना व्यवस्थित था कि लगता ही नहीं था कि यह कोई घर है जिसमें एक नहीं, हम पाँच जीवित प्राणी रहते हैं।

रोजाना दिन की शुरूआत माँ के जागने और फिर उनके भजन गुनगुनाने से होती है। रोजाना सुबह बाबू दो कप चाय पीते और ठीक आठ बजे घर से रवाना होकर दुकान चले जाते। रोजाना मैं और तनु दी स्कूल जाते और शरद भैया कॉलेज। रोजाना शाम को बाबू के घर आने तक मैं ज्ञान, दिवाकर और तनवीर के संग खेलता। तनु दी रसोई में माँ का हाथ बँटाती। शरद भैया अपने दोस्त परमजीत के यहाँ पढ़ने चले जाते। रोजाना बाबू के घर लौटने का समय एक ही होता-आठ से साढ़े आठ के बीच।

बाबू के आते ही तनु दी रसोई में से निकलकर दरवाजे तक जातीं। बाबू अपनी थैली तनु दी को देकर जूते खोलते। वे अपने जूते हमेशा दरवाजे के पासवाले आले में दायीं तरफ रखते। कभी भूल से या जल्दी में बाबू ने अपने जूतों को घर में किसी दूसरी जगह नहीं छोड़ा। बाबू के घर लौटने के थोड़ी देर बाद हम खाना खाते। खाना खाकर मैं और तनु दी सोने चले जाते। बाबू चौक में बैठकर अगरबत्ती के तिनके से दाँत कुरेदते या हाथ बाँधे टहलते रहते। करीब दस बजे शरद भैया परमजीत के घर से लौटते। उनके आने के थोड़ी देर बाद घर की बत्तियाँ गुल हो जातीं।

इस दिनचर्या में कभी हेर-फेर हुआ हो, मुझे याद नहीं। इस निश्चित, नियमित दिनचर्या का असर घर की बेजान चीजों और जगहों पर भी देखा जा सकता था। उस आले का फर्श, जहाँ शौच के बाद हाथ धोने के लिए वेकलू (रेत) पड़ी रहती थी, घिसकर ढलवाँ हो गया था। खाने के बाद थाली हटाकर रसोई के बाहर जिस जगह बाबू गीले हाथ फिराते थे, वह जगह चिकनी, काली और बदरंग-सी हो गयी थी।

जाने क्यों कभी ऐसा नहीं हुआ उन बरसों में कि किसी दिन बाबू या शरद भैया ने घर लौटने के अपने निर्धारित समय से ज्यादा देर की हो और माँ या तनु दी चिन्तित हुई हों।

उन दिनों घर में आकस्मिक कही जा सकने वाली घटना अगर कभी होती भी थी तो यही कि गर्मियों में किसी शाम पतंग के पीछे भागते हुए मैं किसी साइकिल से टकराकर अपने घुटने को जख्मी कर लेता और शरद भैया मुझे पीटते, या किसी-किसी दिन शरद भैया का दोस्त परमजीत अपनी बहन राजिन्दर कौर को लेकर हमारे घर आ जाता। घर में आपसी बातचीत के दौरान हम कभी हिन्दी नहीं बोलते थे और माँ को तो हिन्दी में बात करना आता ही नहीं था। लेकिन परमजीत या उसकी बहन राजिन्दर कौर से बात करते वक्त माँ टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेती थीं। परमजीत के जाने के बाद मैं और तनु दी उसका मजाक उड़ाया करते थे।

रेलवे स्टेशन नजदीक होने के कारण उन दिनों मैं, ज्ञानू, दिवाकर और तनवीर खेलते प्लेटफॉर्म पर चले जाते थे। दृश्य याद आता है। रंगी-पुती छक्-छक् करती लोगों को लाती-ले जाती रेलगाड़ियाँ और यार्ड में पड़ा वह टूटा बदरंग डिब्बा, जो हमारे छुपने की खास जगह था, बिल्कुल हमारे घर की तरह अलग-अलग और गतिहीन।

बचपन के वे बरस बिना घटनाओं वाले थे, इसलिए मैं उन्हें खाली बरस कहता रहा।

प्रतीक्षा के बरस और हताशा

ये वे दिन थे जबकि शरद भैया अपनी पढ़ाई पूरी करके नौकरी तलाश कर रहे थे और तनु दी कॉलेज जाने लगी थीं। इन्हीं दिनों मुझे यह लगने लगा था कि बरसों बाद में जब जल्दी ही कोई घटना होगी। लेकिन मैं ही क्यों, माँ और बाबू और शरद भैया भी तो यही सोचते थे।

उन दिनों मुझे कम से कम दो बड़ी घटनाओं की उम्मीद थी। पहली घटना तो मेरे ख्याल से यही हो सकती थी कि शरद भैया को नौकरी मिल जाती। और दूसरी घटना?

दूसरी घटना की बाबत सोचते हुए मैं अकसर उलझ जाता था, क्योंकि माँ और बाबू जो सोचते थे वह शरद भैया के सोचने से भिन्न था। माँ और बाबू की बनाई हुई भविष्य की योजना के मुताबिक शरद भैया की नौकरी लग जाने के दो-तीन साल बाद (जबकि थोड़ा पैसा जमा हो जाये) सबसे पहले मकान की मरम्मत होनी थी। बाबू चाहते थे कि ऊपर छत पर एक कमरा और एक स्नानघर बन जाये, रसोई का फर्श ठीक हो जाये और दीवारों पर फिर से पलस्तर चढ़ जाये। इस तरह जब घर मेहमानों के लायक हो जाये तो शरद भैया और तनु दी की शादियाँ एक-साथ हो जायें, ताकि तनु दी के जाने से रिक्त होनेवाली जगह शरद भैया की पत्नी के आने से भर जाये। भविष्य में होने वाली घटनाओं की इस काल्पनिक सूची में इन बड़ी घटनाओं के अलावा बाबू ने माँ के साथ किसी तीर्थ पर जाने की छोटी घटना को जोड़ा था और माँ ने तीर्थ की बजाय बाबू के एकजमा के इलाज को।

लेकिन मेरे ख्याल से माँ और बाबू की इस योजना में सबसे बड़ी बाधा थे खुद शरद भैया। नौकरी मिल जाने के बाद सबसे पहले शरद भैया तनु दी के दायित्व से मुक्त हो जाना चाहते थे। तनु दी से पहले या उनके साथ-साथ वे शादी नहीं कर सकते थे। कम से कम उस लड़की से तो हरगिज ही नहीं जिसे माँ और बाबू पसन्द करने वाले थे। यह बात माँ और बाबू भले ही नहीं जानते थे, मुझसे छुपी हुई नहीं थी। मैं कोई एकदम छोटा बच्चा तो था नहीं। शरद भैया एम.ए. कर रहे थे, मैं भी तो दसवीं में आ गया था, और यह बात मुझे खूब अच्छी तरह मालूम थी कि शरद भैया परमजीत की बहन राजिन्दर कौर से शादी करना चाहते हैं।

शरद भैया का किसी लड़की के साथ चक्कर है, यह बात पहली बार मुझे ज्ञानू ने बताया थी। तब तक मैंने राजिन्दर कौर को देखा नहीं था, इसलिए ज्ञानू ने जब मुझे बताया कि पायल सिनेमा हॉल के सामनेवाली गली में उसने शरद

भैया को एक लम्बी गोल-मटोल चेहरेवाली गोरी-लड़की के साथ, जिसने गहरे रंग की शलवार और वैसे ही रंग का पूरी आस्तीनवाला कुरता पहन रखा था, देखा तो मैं यह नहीं सोच पाया कि वह परमजीत की बहन हो सकती है। पर बाद में जबकि राजिन्दर कौर हमारे घर आने लगी और दो-एक बार मैंने उसे शरद भैया के साथ फोर्ट रोड पर घूमते देखा तो मैं समझ गया कि उस दिन ज्ञानू ने जिस लम्बी और गोरी लड़की का जिक्र किया था, वह राजिन्दर कौर ही थी।

राजिन्दर कौर के बोलने का लहजा एकदम परमजीत जैसा ही था। दोनों के चेहरे भी बहुत मिलते-जुलते थे। लेकिन राजिन्दर कौर का रंग उसके भाई की तुलना में काफी गोरा था और शायद यही वजह थी कि उसके होंठ और मुँहासे हमेशा लाल सुर्ख दिखाई देते थे। परमजीत की तरह उसके हाथ में भी स्टील का एक कड़ा रहता था जो मुझे बहुत पसन्द था और मैं सोचता था कि जब शरद भैया उसके साथ शादी कर लेंगे तो मैं उससे कड़ा माँग लूँगा।

लेकिन कुछ नहीं हुआ। शरद भैया को नौकरी मिली और राजिन्दर कौर की भी शादी हो गयी। राजिन्दर कौर ने शायद सारी बात अपने घरवालों को बता दी थी, तभी तो परमजीत ने हमारे यहाँ आना-जाना छोड़ दिया और हममें से कोई भी राजिन्दर कौर की शादी के जलसे में शामिल नहीं हुआ। इस पूरे घटनाक्रम पर शरद भैया किस तरह सोचते थे, यह जानने का कोई साधन नहीं था क्योंकि वे भी बाबू की तरह शुरू से ही अन्तर्मुखी स्वभाव के थे। बाबू की भाँति वे न जोर से हँसते और न ऊँची आवाज में बोलते। सचमुच मैंने तब तक शरद भैया और बाबू को ठहाका लगाकर हँसते हुए नहीं देखा था, खैर।

राजिन्दर कौर की शादी के बाद भी जीवन पूर्ववत् चलता रहा, पूरे तीन बरस और, फिर कहीं जाकर वह साल आया तो पिछले सालों से अलग था।

घटना-वर्ष

यह साल पिछले सालों की तरह खाली नहीं था। इस साल एक के बाद एक चार घटनाएँ हुईं जिनसे वह पुराना ढर्रा एकदम बदल गया।

उस साल पहली घटना मार्च के दूसरे सप्ताह में हुई थी और वह थी बाबू की दुकान से छुट्टी। हालाँकि यह कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी, क्योंकि कोई सालभर पहले से ही एक्जिमा जैसी किसी बीमारी के कारण बाबू के दोनों हाथों की उंगलियाँ लगभग सड़ गयी थीं। लगातार इलाज के बावजूद यह रोग ठीक होने की बजाय बढ़ता ही जा रहा था और अब तो बाबू की उँगलियों में से चिपचिपा पानी भी बहने लगा था, जिससे बहुत तेज दुर्गन्ध आती थी।

सेठ ने पहले तो इस ओर ध्यान नहीं दिया, लेकिन एक दिन जब बाबू एक गोरी, फैशनेबुल औरत के सामने कपड़े का थान खोल रहे थे तो उस औरत ने बाबू के हाथों की तरफ नजर जाते ही गिच-गिचाकर काउंटर पर ही उल्टी कर दी तथा यह कहते हुए वह दुकान से निकल गयी कि ऐसी गन्दी जगह से वह कपड़े नहीं लेगी, तब कहीं जाकर मजबूरन सेठ को बाबू से यह कहना पड़ा कि अब वे कपड़े की दुकान पर काम करने लायक नहीं रहे।

सेठ ने बाबू से यह भी कहा था कि अगर बाबू चाहें तो अपनी जगह अपने किसी बच्चे (शरद भैया, तनु दी या मुझे) को दुकान पर रखवा सकते हैं, लेकिन बाबू ने सेठ का प्रस्ताव नहीं माना। इस इनकार का कारण यह था कि हालाँकि शरद भैया को अपनी पढ़ाई पूरी किये करीब चार बरस हो चुके थे और अभी तक वे बेरोजगार ही थे, परन्तु फिर भी बाबू उन्हें ऐसी किसी प्राइवेट नौकरी में फँसना नहीं चाहते थे जिसमें सुबह के आठ से रात के आठ बजे तक काम करने के बावजूद न तो ढंग की तनख्वाह मिलती हो और न बूढ़े हो जाने पर पेंशन।

तनु दी लड़की थीं और बाबू को लड़कियों को नौकरी करना (कम से कम

किसी कपड़े की दुकान पर जहाँ कई तरह के लोग आते हों) पसन्द नहीं था इसलिए तनु दी भी बाबू की जगह नहीं ले पायीं; रहा मैं, तो मेरे लिए बाबू यह सोचते (और कहते भी) थे कि अभी मेरी उम्र नौकरी के लायक नहीं, इसलिए फिलहाल मुझे सिर्फ मन लगाकर पढ़ना चाहिए।

तो जब बाबू हम तीनों में से किसी एक को भी अपनी जगह दुकान पर रखने के लिए तैयार नहीं हुए, तब उस साल मार्च के दूसरे सप्ताह में एक दिन सेठ ने बाबू को पूरे महीने की तनख्वाह के अलावा एक छड़ी, सूट का कपड़ा और पाँच सौ एक रूपए नकद देकर दुकान से छुट्टी दे दी।

दूसरी घटना जुलाई में हुई थी और वह थी एक सेमी गवर्नमेंट डिपार्टमेंट में शरद भैया की नियुक्ति की घटना। शरद भैया की नौकरी लगने पर माँ और बाबू ने राहत की साँस ली, क्योंकि उनके ओवरएज होने में सिर्फ तीन-चार महीने ही रह गये थे।

शरद भैया को वह नौकरी बाबू और हमारे पड़ोस में रहनेवाले बंदी काका के प्रयासों से मिली थी। अगर बाबू और बंदी काका बोर्ड के चेयरमेन बतरा साब के घर न गये होते और बतरा साब की दस हजार की डिमांड पूरी नहीं की गयी होती तो....

मई में इन्टरव्यू था। इन्टरव्यू देने के बाद हर बार की तरह कहा तो शरद भैया ने यही कहा था कि इन्टरव्यू अच्छा हुआ है और उन्हें पूरी उम्मीद है कि उनका चयन हो जायेगा, लेकिन बाबू नहीं माने। वे रिजल्ट की प्रतीक्षा करने की बजाय कोई 'सोर्स' ढूँढ़ना चाहते थे जो उन्हें जल्दी ही मिल गया। फिर एक दिन वे बंदी काका के साथ बतरा साब के घर गये और जब लौटे तो प्रसन्न थे। उन्होंने बतरा साब की डिमांड के बारे में बताया जिसे सुनकर एकबारगी माँ भड़क गयी। माँ को नौकरी के लिए पैसा देने की बात जँची नहीं। जहाँ मैं और तनु दी यह सोच रहे थे कि शरद भैया के भविष्य को देखते हुए दस हजार कोई

बहुत बड़ी रकम नहीं, वहाँ माँ इस बात से नाराज थीं कि बाबू ने एक-एक पैसा जोड़कर जो रूपये जमा किये थे, वे यों ही खर्च हो जायेंगे। माँ के विचार से उन रूपयों का सही उपयोग तनु दी की शादी के समय ही हो सकता था। पर माँ की आनाकानी ज्यादा टिक नहीं पायी। मैं, तनु दी और बाबू इसे एक अच्छा अवसर बताते हुए एकमत थे। शरद भैया चूँकि चुप थे, इसलिए माँ अकेली पड़ गयी और बाबू रुपया दे आये। फिर बीच जुलाई में शरद भैया को अप्रॉयंटमेंट मिल गया।

जिस दिन शरद भैया पहली बार ऑफिस गये, माँ ने मीठे चावल बनाये थे। शाम को शरद भैया के लौटने पर घर में जो बैठक जमी, वह देर रात तक चलती रही। बद्री काका भी सपरिवार हमारे यहाँ आमंत्रित थे। पूरे तीन महीने घर पर इस घटना का असर रहा, फिर एक और घटना हो गयी।

अक्टूबर के दूसरे सप्ताह अचानक एक दिन शरद भैया को नौकरी से हटा दिया गया। कारण कि बतरा साब ने जो नियुक्तियाँ की थीं, उनके लिए न तो उन्होंने विधिवत् रोजगार-दफ्तर से आशार्थियों की सूची मँगवायी थी और न ही दूसरी औपचारिकताएँ पूर्ण की थीं। इतना ही नहीं, उन्होंने चारों रिक्त पदों पर सवर्ण लड़कों को नियुक्ति दे दी थी, जबकि कायदे से उन्हें एक पद पर अनुसूचित जाति के उम्मीदवार को लगाना था। यही कारण था कि इन नियुक्तियों के फौरन बाद ही बतरा साब के विरुद्ध शिकायत हो गयी थी।

शुरू-शुरू में किसी ने इस मामले को सीरियसली नहीं लिया था, क्योंकि हम सभी यह ही सोचते थे कि ऐसे मामलों में शिकायतें होना आम बात है। दूसरे, बतरा साब के बारे में भी सुना था कि वे बेहद घाघ और तिकड़मबाज आदमी हैं, उनकी एप्रोच ठेठ ऊपर तक है।

लेकिन मालूम नहीं कैसे, मामले ने तूल पकड़ ली और बीच सितम्बर में ही बतरा साब का ट्रांसफर हो गया। उस वक्त बाबू और शरद भैया बतरा साब

के घर गये थे। और जब बाबू ने शरद भैया की नौकरी छिन जाने की आशंका व्यक्त की थी तो बतरा साब ने हँसते हुए शरद भैया की तरफ देखते हुए कहा था - “चिन्ता की बात नहीं तुम तो डटे रहो।”

बतरा साब के यहाँ से लौटकर बाबू ने उनसे हुई भेंट का सारा वृत्तान्त सुनाने के बाद माँ को आश्वस्त करने के लिए यह भी कहा था कि जल्दी ही बतरा साब का ट्रांसफर रद्द भी हो जायेगा। परन्तु ट्रांसफर रद्द नहीं हुआ, बतरा साब की पूरी कोशिश के बावजूद। लाचार बतरा साब छुट्टी लेकर बैठ गये और उनकी जगह आये नये अधिकारी ने चार्ज एज्यूम करने के एक सप्ताह बाद ही विभाग को बतरा साब द्वारा की गयी अनियमितताओं का ब्यौरा अर्द्धशासकीय पत्र के जरिये भेज दिया। इसी पत्र के कारण विभाग के तीन माह के लिए की गयी नियुक्तियों के मामले में एक्स्टेंशन नहीं दी और फलस्वरूप शरद भैया की नौकरी छूट गयी। यह उस साल की तीसरी घटना थी।

इस घटना के तीन दिन बाद बद्री काका और शरद भैया वकील से मिले। वकील ने, जो शरद भैया के साथ पढ़ा हुआ था, सारे कागजात देखने के बाद साफ कह दिया कि इस मामले में अब कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि नियुक्ति केवल तीन माह के लिए थी और वह भी सर्वथा अस्थायी तौर पर दी गयी थी, इसलिए विभागीय निर्णय को कोर्ट में चैलेन्ज करने से कोई फायदा नहीं।

वकील के यहाँ से निराश होकर लौटने के बाद शरद भैया हर रोज बतरा साब के यहाँ चक्कर लगाने लगे। बतरा साब चूँकि बाहर गये हुए थे, अतः उनसे भेंट नहीं हो पा रही थी। इस बीच बाबू और माँ के व्यवहार में अजीब-सा बदलाव आने लगा। माँ जो पहले ज्यादातर चुप रहती थीं, अब बहुत चिड़चिड़ी हो गयी थीं। बात-बेबात बाबू से उलझना और उन्हें ताने कसना माँ की दिनचर्या का हिस्सा हो गया, जबकि बाबू पहले से कहीं अधिक चुप, उदास और बीमार रहने लगे।

पैसों की चिन्ता सिर्फ माँ को ही थी, सो बात नहीं, बाबू भी चिन्तित थे पर

उन्हें उम्मीद थी कि बतरा साब अपने वायदे के मुताबिक शरद भैया को एक्स्टेंशन दिलवाकर कर्नफम नहीं कर पाने के कारण पैसे लौटा देंगे।

और शरद भैया- सबसे खराब स्थिति तो घर में उनकी हो गयी थी। माँ को अब वे जैसे बर्दाश्त ही नहीं हो रहे थे। सुबहदम उन्हें देखते ही माँ किसी न बहाने कोसना शुरू कर देती। प्रायः वे चुप रहकर कलह को टालने की कोशिश करते, लेकिन इस कोशिश में कई बार उन्हें बिना कुछ खाये-पिये पूरे-पूरे दिन घर से बाहर भटकना पड़ता।

कितने ही दिन यही क्रम चलता रहा, फिर एक दिन बंदी काका ने ही आकर यह सूचना दी कि बतरा साब लौट आये है। बाबू इस सूचना से इतने उतावले हो गये कि बुखार के बावजूद खुद शरद भैया को लेकर बतरा साब के यहाँ जाने लगे, लेकिन बंदी काका ने समझा-बुझाकर उन्हें रोक दिया और बाबू की जगह वे खुद शरद भैया को साथ लेकर बतरा साब के यहाँ गये।

यह 10 दिसम्बर की बात है। यह तारीख मुझसे भुलाये नहीं भूलती। पिछली रात श्रीनगर में हिमपात के कारण उस दिन ठंड और दिनों से तेज थी। पूरे दिन सूरज नहीं निकला था। तेज हवा से किवाड़ बजते रहे थे। दूधवाला सुबह छह के बजाय आठ बजे आया था। छत पर तुलसी का गमला बन्दर ने उलट दिया था। बाबू बाजरी का दलिया खाकर, दूध के साथ कुनैन की गोली निगलने की कोशिश में उल्टी करने के बाद शरद भैया का इन्तजार करते हुए सो गये थे। दोपहर तीन बजे जब तनु दी उनके कमरे में गर्यी तो वे नींद में कुछ बड़बड़ा रहे थे। माँ ने कमरे की खिड़की बन्द करके उन्हें एक कम्बल ओढ़ा दिया था। शायद पाँच-सवा पाँच बजे शाम को शरद भैया घर लौट थे। इस वक्त माँ रसोई में बाबू के लिए चाय बना रही थीं। शरद भैया की आवाज सुनकर बाबू ने उन्हें बुलाया। शरद भैया के पीछे-पीछे मैं भी बाबू के कमरे में गया। बाबू तकिए का सहारा लिये बैठे थे और शायद भैया बता रहे थे कि बतरा साब ने पैसे लौटाने

से इन्कार कर दिया है, इसलिए अब वे कल से बाबू की जगह दुकान पर काम करने के लिए सेठ से मिलने जा रहे हैं।

शरद भैया की बात सुनकर एक क्षण, हाँ, केवल एक क्षण के लिए बाबू के चेहरे का रंग उड़ा, फिर अचानक उनके होंठों पर मुस्कराहट-सी उभरी और इससे पहले कि शरद भैया कुछ और कहते, बाबू जोरदार ठहाका लगाकर हँसने लगे।

हम बाबू का ठहाका रुकने का इन्तजार करते रहे, कितनी ही देर। लेकिन वे हँसते ही रहे। तब बड़ी मुश्किल से उन्हें रस्सी से बाँधकर हम मेंटल हॉस्पिटल छोड़ आये और यह उस साल की चौथी घटना थी।



रघुनन्दन त्रिवेदी

कथाकार रघुनन्दन त्रिवेदी का जन्म 17 फरवरी 1955 को हुआ और कम उम्र में ही 10 जुलाई 2004 को उनका निधन हो गया। यूं तो रघुनन्दन ने 80-90 के दशक में लिखना शुरू कर दिया था। किन्तु उनकी प्रतिष्ठा इसी अन्तिम दशक में बनी। उनके तीन कथा संग्रह हैं 'यह ट्रेजडी क्या हुई' (1988), 'वह लड़की अभी जिन्दा है' (1994), 'हमारे शहर की भावी लोक कथा' (2001)। उनकी कविताएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं, लेकिन वह संग्रह का रूप नहीं पायीं। रघुनन्दन ने प्रायः छोटी कहानियां लिखीं लेकिन समय की विषमताओं को पकड़ने की जबरदस्त कोशिश की। लघुकथाएं भी लिखीं और उनमें भी बड़े-बड़े विमर्श किए। 'यह ट्रेजडी क्यों हुई' कहानी संग्रह पर राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर द्वारा रांगेय राघव पुरस्कार और 'वह लड़की अभी जिन्दा है' पर 'अंतरिम सम्मान' से नवाजे जा चुके हैं।